लाइकेन

जीवन का एक उपयोगी संगम

हंस राज नेगी

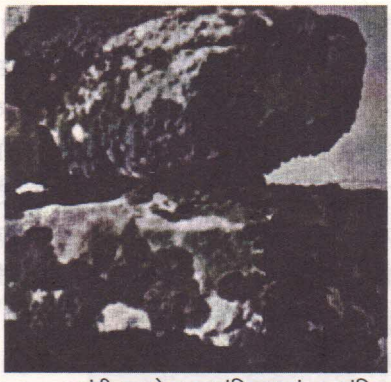

नारंगी लाइकेन - आंशिक फफूंद, आंशिक शैवाल। पेड़ों की छाल और पत्थरों पर जीते

लाइकेन सादगी और सहयोग की उम्दा मिसाल हैं। ये जलवायु की अतिरेक परिस्थितियों में जीने में सक्षम हैं - समुद्र तट से लेकर हिमालय की ऊंची-ऊंची वीरान चोटियां और आर्क्टिक का टुण्ड्रा प्रदेश इनका आवास है।

लाइकेन दरअसल हरी शैवाल कोशिकाओं और उनसे लिपटे फफूंद तंतुओं से मिलकर बने होते हैं। इनमें जड़, तना और पत्ती जैसे अलग-अलग अंग नहीं होते। इसी वजह से ये पर्यावरण की कठोरतम परिस्थितियों में भी किफायती ढंग से जीवित रह पाते हैं। देखा जाए तो लाइकेन्स ने जीवन की एक गौरतलब रणनीति विकसित की है। इनमें यह क्षमता होती है कि हवा या ओस में उपस्थित थोड़ी-सी भी नमी को सोखकर अपनी जैविक क्रियाएं जारी रख सकते हैं। इसके विपरीत तेज़ धूप और शुष्क वातावरण में ये अपनी नमी को छोड़कर सूखकर भी जीवित बने रहते हैं। पानी की मात्रा कम होने के साथ इनमें प्रकाश संश्लेषण की क्रिया रुक जाती है और उसके बाद श्वसन भी बन्द हो जाता है। अब ये तभी सक्रिय होते हैं जब फिर से नमी मिले। प्रकाश संश्लेषण यानी धूप में अपना भोजन बनाने की क्षमता हरी शैवाल में होती है। शैवाल जो भोजन बनाती है, उसे अपने फफूंद साथी के साथ बांटती है। दूसरी ओर फफूंद शैवाल को रहने के लिए आवास उपलब्ध कराती है। सहयोग के इस रूप को हम सहजीवन यानी सिम्बायोसिस कहते हैं। परस्पर लाभप्रद इस सहजीवन से जीवन की एक नई इकाई का सृजन होता है जिसे लाइकेन नाम दिया गया है। ये लाइकेन प्रतिवर्ष 1-5 मि.मी. की रफ्तार से वृद्धि करते हैं और पेड़ों व चट्टानों पर सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहते हैं।

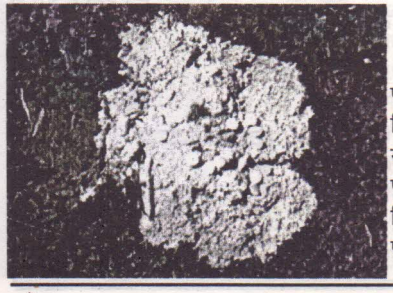

फफूंद और मॉस से घिरा यह लाइकेन मलेशिया के एक पहाड़ की चोटी के विशिष्ट जलवायु में फल फूल रहा है।

पेड़ों या चट्टानों पर बसे लाइकेन भूरे, हरे या नारंगी धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। आकार-प्रकार के आधार पर इन्हें तीन प्रमुख समूहों में बांटा गया है - क्रस्टोज़ यानी पपड़ीनुमा, फोलिओज़ यानी पत्तीनुमा और फ्रक्टिओज़ यानी झाड़ीनुमा। प्रथम समूह के लाइकेन्स को सूक्ष्म लाइकेन तथा शेष दो समूहों के लाइकेन्स को स्थूल लाइकेन कहते हैं।

लाइकेन्स लगभग किसी भी सतह पर डेरा डाल सकते हैं बशर्ते कि वह सतह थोड़ी स्थाई हो और वहां पर्याप्त प्रकाश मिले। लाइकेन्स प्रायः चट्टानों, मिट्टी, पेड़ों के तनों व शाखाओं, मृत लकड़ी, जन्तुओं की खोल, हड्डियों, कीटों की पीठ, प्लास्टिक, ईंट, सीमेंट, कांक्रीट की छतों, दीवारों, कांच व लोहे पर उगते दिखते हैं। लाइकेन का फफूंद साथी स्पोर्स उत्पन्न करता है। ये उसकी काया में बने विशेष अंगों (फ्रूटिंग बॉडी) में उत्पन्न होते हैं तथा उसके प्रजनन में सहायक होते हैं। अनुकूल आधार मिलने पर ये स्पोर्स अंकुरित हो जाते हैं और आसपास से उपयुक्त शैवाल को जकड़कर एक नई लाइकेन बस्ती का निर्माण

करते हैं। मगर पुनर्निर्माण की इस प्रक्रिया में कई अगर-मगर हैं। इसलिए लाइकेन में प्रजनन की दूसरी विधि यह है कि फफूंद व शैवाल साथ-साथ ही यहां-वहां फैलते हैं। लाइकेन की कुछ प्रजातियों में फफूंद व शैवाल के मिले-जुले कण बनते हैं। इन्हें सोरेडिया कहते हैं। ये हवा और पानी द्वारा दूर-दूर तक फैलते हैं। कुछ प्रजातियों में इसी काम के लिए इनसिडिया नामक रचना बनती है जो बाद में टूटकर अलग हो जाती है व नई जगह पर लाइकेन बस्ती बनाती है।

पहचान

लाइकेन की प्रजातियों को पहचानने में सबसे उपयोगी चीज़ उनके रंगीन चित्र होते हैं। मगर यदि एकदम सही पहचान करना है तो विभिन्न लाइकेन के नमूने एकत्रित करना होते हैं। लाइकेन के नमूने सुरक्षित रखने के लिए बांस के कागज़ की थैलियों का उपयोग किया जाता है। प्रयोगशाला में लाकर इनके तंतुओं के रंग व आकार, सोरेडिया की उपस्थिति, स्पोर्स की आकृति वगैरह का अध्ययन किया जाता है। प्रजातियों के बीच भेद करने में कुछ रासायनिक परीक्षण भी काम आते हैं। ये परीक्षण काफी आसान हैं और घर या स्कूल में किए जा सकते हैं। परीक्षण रसायन में पोटेशियम हाइड्रॉक्साइड, सोडियम हायपोक्लोराइट या पेराफिनायलीन डाएमीन होता है। इस घोल की एक बूंद डालकर रंग परिवर्तन पर ध्यान दिया जाता है।

भौगोलिक वितरण

अनुमान यह है कि जीव वैज्ञानिकों ने वनस्पतियों व जंतुओं की लगभग 17 लाख प्रजातियों की पहचान की है। इनमें से लगभग 20,000 लाइकेन्स हैं। हाल ही में यह आकलन प्रस्तुत हुआ है कि लाइकेन के अधिकांश सर्वेक्षण समशीतोष्ण और बोरीयल क्षेत्रों में हुए हैं जबकि वनस्पति के मामले में समृद्ध कटिबंधीय क्षेत्रों में ऐसे सर्वेक्षण बहुत कम किए गए हैं। इस आधार पर यह सोचा जा रहा है कि दुनिया में एक लाख से ज़्यादा लाइकेन प्रजातियां होंगी।

भारत एक विशाल जैव विविधता वाला देश है। अनुमान है कि यहां लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों की करीब 5 लाख प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें से मात्र 27 प्रतिशत का ही विवरण उपलब्ध है। भारत में दस्तावेजीकृत प्रजातियों में 17,500 फूल धारी वनस्पतियां, 2021 लाइकेन्स, 2825 ब्रायोफाइट्स, 86874 जंतु (59,352 कीट प्रजातियों समेत) शामिल हैं। ये सब मिलकर दुनिया में कुल दस्तावेजित प्रजातियों का मात्र 7 प्रतिशत है। एक अनुमान यह है कि दुनिया भर में जीवों की कुल 1-3 करोड़ प्रजातियां हैं। इनमें से भारत में 2-5 प्रतिशत तक के पाए जाने का अनुमान है। आशय यह है कि अभी भी भारत में लाइकेन की करीब 5000 प्रजातियां और हैं, जिनसे हमारा परिचय नहीं है। आज की स्थिति में लाइकेन प्रजातियों के लिहाज़ से भारत दुनिया में पांचवें स्थान पर है। भारत में 8 लाइकेन क्षेत्र हैं

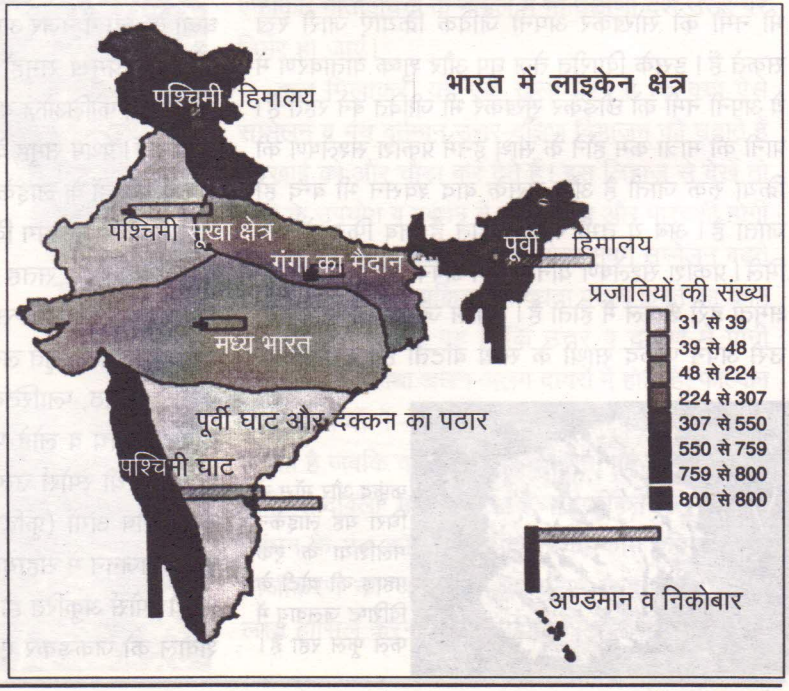

(चित्र 1)। इनमें से पश्चिमी घाट, पश्चिमी हिमालय और पूर्वी हिमालय सबसे समृद्ध हैं और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में 550-800 प्रजातियां पाई गई हैं। अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह लाइकेन के 'हॉट स्पॉट' हैं। इन द्वीपों के छोटे से क्षेत्रफल के हिसाब से यहां उन प्रजातियों की संख्या काफ़ी अधिक है जो सिर्फ यहीं पाई जाती हैं। ऐसा लगता है कि इस तरह की एन्डेमिक प्रजातियां कटिबंध क्षेत्र में ज़्यादा पाई जाती हैं। एक और बात यह है कि पूर्वी घाट व मध्य भारत क्षेत्र का सर्वेक्षण बहुत कम हुआ है। शायद ये क्षेत्र भी लाइकेन के खज़ाने साबित हों। गंगा के मैदान में खेती की बहुतायत के कारण और पश्चिमी भारत में सूखी परिस्थिति के कारण शायद लाइकेन प्रजातियां कम हों।

प्रदूषण के सूचक

लाइकेन्स में अपने परिवेश से पोषक तत्व प्राप्त करने के कारगर तरीकों का विकास हुआ है। शैवाल साथी की बदौलत उपलब्ध ऊर्जा का उपयोग करके ये नाइट्रेट व सल्फेट जैसे ऋणायन सोख लेते हैं और अपनी कोशिकाओं में संग्रह कर लेते हैं। लाइकेन्स आयन एक्सचेंज के ज़रिए कैल्शियम आयन भी सोखते हैं और ये चट्टानों, मिट्टी या अन्य भारी धातु युक्त प्रदूषक पदार्थों के कण भी जज़्ब कर जाते हैं। लाइकेन्स कुछ ऐसे रसायनों का निर्माण करते हैं जो इन पदार्थों को विघटित करके पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं।

लाइकेन्स की इस क्षमता का उपयोग किसी स्थान पर प्रदूषण का स्तर जांचने में किया जा सकता है। हवा से पदार्थों को सोखने की लाइकेन्स की क्षमता का उपयोग जियो-बॉटेनिकल खोजबीन में किया जाता है और नाभिकीय

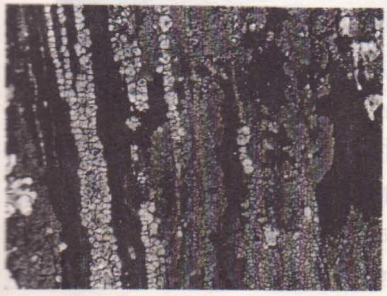

पत्थरों और पेड़ों की छाल पर उगने वाले लाइकेन बारिश की नमी पर ज़िन्दा रहते हैं। इनका प्रकाश संश्लेषणक साथी जैविक भोजन बनाता है जिसपर ये और फफूंद ज़िन्दा रहते हैं।

लाइकेन की यह पीली प्रजाति है *राइज़ोकार्पोन जियोग्राफिकम*। नक्शे की तरह लगने वाली इसकी बाहरी रेखा के कारण इसे यह नाम मिला।

परीक्षणों के बाद उत्पन्न हुए रेडियो सक्रिय पदार्थों की जांच करने में भी। हरेक प्रजाति की एक निश्चित सहन क्षमता होती है। कई सारी प्रजातियां (जैसे *उस्नीया लॉन्गीसिमा*, *लोबेरिया पल्मोनेरिया*, *पार्मेलिया सिरैटा*) सिर्फ स्वच्छ पर्यावरण में ही ज़िन्दा रहती हैं। दूसरी ओर *लेकानोरा कोनिज़िआइड्स* और *क्लेडोनिया कोनिओक्रिया* जैसी कुछ प्रजातियां प्रदूषित क्षेत्रों में भी फलती-फूलती हैं। कई अन्य ऐसी प्रजातियां भी हैं जो हल्के से मध्यम स्तर का प्रदूषण झेल जाती हैं। लिहाज़ा किसी भी क्षेत्र में लाइकेन बस्तियों का सर्वेक्षण करके वहां प्रदूषण की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। लाइकेन के नमूनों के रासायनिक विश्लेषण से यह भी पता लगाया जा सकता है कि किसी क्षेत्र में कौन से व कितने वायु प्रदूषक मौजूद हैं। इसके अलावा यदि स्वस्थ लाइकेन को स्वच्छ पर्यावरण से प्रदूषित पर्यावरण में ले जाया जाए तो उन पर क्षति के कई लक्षण प्रकट होते हैं। उनका रासायनिक विश्लेषण करके वायु प्रदूषकों का अनुमान लग सकता है। ब्रिटेन व आयरलैण्ड जैसे कई देशों में स्कूल व विश्वविद्यालय के छात्रों के सहयोग से इस तरह का उल्लेखनीय काम किया गया है। भारत में अभी पाठ्यक्रम में इस तरह की गतिविधियां नहीं हैं। हमारी समृद्ध जैव विविधता तथा स्कूल-कॉलेज में उपलब्ध प्रतिभा के मद्देनज़र इस तरह के कार्यक्रम शुरू करने की व्यापक सम्भावना है।

संरक्षण

कई सारी लाइकेन प्रजातियों का उपयोग लोक चिकित्सा के क्षेत्र में होता है। इसके अलावा कई लाइकेन मसालों के